श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

भागवत-पत्रिका

वर्ष १७ | फाल्गुन-चैत्र, सम्वत् २०२९ | सं० १०-११

मार्च-अप्रेल, १९७२

श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु

सम्पादक—त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

कार्यालय—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, पो० (मथुरा) उ० प्र०

संस्थापक—नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
परमहंसस्वामी १००८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजी

वर्तमान सभापति—आचार्य एवं नियामक
त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज

प्रचार संपादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज

सहकारी सम्पादक-संघ —

[१] त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज (संघपति)
[२] त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज
[३] विद्यावाचस्पति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, नव्य व्याकरण, पुराण-इतिहास-धर्मशास्त्र सांख्य-आचार्य, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न, एम० ए०, पी-एच० डी०
[४] पण्डित श्रीयुत केदारदत्त तत्राडी, साहित्यरत्न, साहित्यालङ्कार, एम० ए०, पी-एच० डी०
[५] डा० श्रीयुत शङ्करलाल चतुर्वेदी, साहित्यरत्न, एम० ए०, पी-एच० डी०
[६] पण्डित बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ
[७] पण्डित श्रीयुत अच्युत गोविन्द दासाधिकारी 'साहित्यरत्न'
[८] पण्डित श्रीयुत श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी
[९] पण्डित श्रीयुत सत्यपाल दासाधिकारी एम० ए०

कार्याध्यक्ष—श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी

{वार्षिक भिक्षा ५। रु०

विषय-सूची

विषय		लेखक	पृ० सं०
१—श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि (जरासन्धरुद्ध नृपतिना श्रीकृष्णस्तोत्रम्)	....	भगवान् श्रीश्रीमद् वेदव्यासजी	२०३
२—श्रीमद्भावाविर्भाव	....	जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर	२११
३—श्रीकृष्णका वनसे प्रत्यागमन (कविता)	....	भक्तप्रवर सूरदासजी	२१६
४—उपसंहार (भक्ति-प्रतिकूल्य)	...	जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर	२१७
५—सन्दर्भ-सार (भक्तिसन्दर्भ-१८)	....	त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज	२२२
६—अपनी बना लो (कविता)	...	कु० सरोज गुप्ता 'सुरेश'	२२५
७—परम भागवत राजा अम्बरीष	...	बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्रजी शास्त्री, साहित्यरत्न काव्यतीर्थ	२२६
८—परमाराध्य गुरुजीके चरणारविन्दोंमें पुष्पांजलि	...	श्रीओमप्रकाश दासाधिकारी बी० ए०, साहित्यरत्न	२३४
९—मेरे दुर्दैवकी बात	....	(साप्ताहिक गौड़ीय से अनूदित)	२३५
१०—कृष्णभक्तकी प्रबल आशा (श्लोक)	....	(श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुसे उद्धृत)	२३९
११—मठवास का तात्पर्य एवं उद्देश्य	....	श्रीश्यामकिशोर ब्रह्मचारी	२४०
१२—श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा और श्रीगौर-जन्मोत्सव	...	श्रीश्यामकिशोर ब्रह्मचारी	२४४

श्रीभागवत पत्रिकाके १७वें वर्षकी विषय-सूची

क्र०सं	विषय	प०सं । पृ०स०
१.	अपनी बना लो (कविता)	१०-११ । २२५
२.	आधुनिकवाद	४ । ७७
३.	आनन्दकी अवधि (पद)	८ । १७१
४.	कुछ प्रश्न और उनके उत्तर	४ । ८६
५.	कृपाकी झलक (कविता)	९। १८६
६.	कृष्णभक्तकी प्रबल आशा (श्लोक)	१०-११ । २३९
७.	गोपियोंका सौभाग्य (पद)	२ । २७
८.	तोषणीकी कथा	५-६ । ९९
९.	धर्मका यथार्थ स्वरूप	१२ । २७१
१०.	धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः	४ । ९५
११.	नवीन ब्रह्मवादकी परिणति	७ । १००
१२.	परमाराध्यतम पतितपावन श्रील आचार्यदेवकी तृतीय विरह-तिथिपर पुष्पांजलि	५-६ । १०३
१३.	परमाराध्यतम श्रीश्रीलगुरुपादपद्मका तृतीय वार्षिक विरहोत्सव	५-६ । १२५
१४.	परमाराध्यतम श्रीश्रीलगुरुपादपद्म ... ... की शुभाविर्भाव-तिथिपर दीन हीन दासाधमकी क्षुद्र पुष्पांजलि	९। २०७
१५.	परमाराध्य पतितपावन श्रीलगुरुजीके चरणोंमें पुष्पांजलि	१०-११ । २३४
१६.	परम प्रभुके चरणोंमें प्रार्थना (कविता)	७ । १४७
१७.	परम भागवत राजा अम्बरीष	१०-११ । २२६
१८.	प्रचार-प्रसंग	१।२३, २।४८, ४।९१, ५-६।१३३, ९ । २०५
१९.	प्रश्नोत्तर—[नामाभास १।७, नामापराध २ । ३३, जीवोंके प्रति दया ३ । ५८, नाम में रुचि एवं वैष्णव-सेवा ४ । ८३, इष्टगोष्ठी ५-६ । १०२, प्रचार ७ । १४३, रस-कीर्त्तन ८।२६५, भक्ति-प्रातिकूल्य ९। १९९ एवं १०-११ । २१७, तथा अन्याभिलाष १२ । २६४	
२०.	भजनका शत्रु कौन है ?	३ । ६७
२१.	भजन क्यों नहीं होता ?	१ । १४
२२.	मठवास का तात्पर्य एवं उद्देश्य	१०-११। २४०

२३. मदनमोहनका अलौकिक रूप (पद) १२। २५३
२४. मनको चेतावनी (पद) ८। १६२
२५. महाभागवतवर वृत्रासुर ५-६।१०८, ८। १७२
२६. महाजनो येन गतः स पन्थाः ७। १५५
२७. मुरलीका अलौकिक प्रभाव (पद) १।६
२८. मुरलीकी अलौकिक तान (पद) ९ १९५
२९. मेरे दुर्दैवकी बात १०-११। २३५
३०. विरह-संवाद ४। ६५, ४। ९०, ५-६। १२६
३१. वैष्णव २ २८
३२. शुद्धा और विद्धा भक्ति ३। ५०
३३. श्रीकृष्णनामकी सर्वसुलभता (श्लोक) २। ३९
३४. श्रीकृष्णका असीम भक्तवात्सल्य (पद) २। ४७
३५. श्रीकृष्णका वनसे प्रत्यागमन (पद) १०-११। २१६
३६. श्रीगुरुपादपद्मकी अपार महिमा ६।१८३
३७. श्रीगौरांग ८। १६३
३८. श्रीचैतन्य महाप्रभुकी विचार-प्रणालीकी सर्वश्रेष्ठता १। १०
३९. श्रीचैतन्य शिक्षामृत १। १३, २। ४०, ३। ६६, ५-६। १२६
४०. श्रीनाम-संकीर्त्तन १२। २५४
४१ श्रीनवद्वीप-धाम परिक्रमा और श्रीगौर-जन्मोत्सव १०-११। २५४
४२. श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्बन्धमें विवरण १०-११। २५०
४३. श्रीमद्भागवतके टीकाकार—[श्रीमन्मध्वाचार्य ५-६।१२०,
श्रीव्यासतत्त्वज्ञ या व्यासतीर्थ, लिंघेरी श्रीनिवास एवं श्रीनिवास-तीर्थ ७। १५२]
४४. श्रीमन्महाप्रभुके अवतरणका रहस्य १२। २६६
४५. श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि १। १, २। २५, ३। ४९, ४।७३, ५-६।६७, ७।१२७,
८। १६१, ६। १८५, १०-११। २०९, १२। २५१
४६. श्रीमध्वाविर्भाव १०-११। २११
४७ श्रीव्यासपूजाका तात्पर्य ९। २०२
४८. श्रीव्यासपूजाका निमंत्रण ८। १८३
४९. सन्दर्भ-सार [भक्ति-सन्दर्भ—२।४३, ३।६०, ५-६।१०४, ७।१४९, ८। १६८, १०-११।२१२
५०. सम्पादकीय ५-६।१३५, ७।१६०

———

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ॥

वर्ष १७ | गौराब्द ४८५, मास—वामन ६, वार—प्रद्युम्न, मंगलवार, ३१ ज्येष्ठ, सम्वत् २०२८, १५ जून १९७१ | संख्या १

जून १९७१

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

वेणुगीतम् (गोपिकानां श्रीकृष्णमहिमा-वर्णनम्)

(श्रीमद्भागवत १०।२१।१-२०)

श्रीशुक उवाच—

इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ।
न्यविशद् वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥१॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—हे राजन् ! श्रीकृष्णने गौओं और गोपाल बालकोंके साथ शरत्कालीन स्वच्छजल युक्त पद्मवनमें विचरणशील सुगन्धियुक्त वायुपरिपूर्ण वृन्दावनमें प्रवेश किया ॥ १ ॥

कुसुमितवनराजिशुष्मिभृंगद्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम् ।
मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥२॥

इसके पश्चात् बलदेव और गोपाल बालकोंके साथ श्रीकृष्ण गोचारण करते-करते कुसुमित वनराजिमें मत्त भ्रमर और पक्षियोंके कलरवसे परिपूर्ण सरोवर, नदी एवं पर्वतमय उस वृन्दावनमें प्रवेश कर वंशीध्वनि करने लगे ॥ २ ॥

तद् व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ।
काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥३॥

किसी किसी व्रजनारीमें उस वंशीध्वनिके श्रवणसे काम का उदय होने के कारण वे अपनी अपनी सखियोंके निकट कृष्णचरित वर्णन करने लगीं ॥ ३ ॥

तद् वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम् ।
नाशकन् स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥४॥

हे राजन् ! वे सभी व्रजाङ्गनाएँ कृष्णचरित्र वर्णन करना आरम्भ कर कृष्णके आचरणका स्मरण हो आनेसे तीव्र काम-प्रभावके कारण विक्षिप्तचित्त होकर और वर्णन करनेमें समर्थ न हो सकीं ॥ ४ ॥

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
विभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥५॥

उस समय श्रीकृष्ण अपने मुकुटमें मयूरपुच्छभूषण, दोनों कानोंमें कनेरके फूल एवं कनकवर्णयुक्त पीत वस्त्र पहने हुए थे । गलदेशमें वैजयन्ती माला धारण कर अधरामृतद्वारा वंशीछिद्र पूरण करते-करते उन्होंने नटवर वेशमें शङ्ख-चक्र वज्रांकुशादि अपने पदचिह्नों द्वारा अङ्कित वृन्दावनमें प्रवेश किया । उस समय गोप बालक लोग उनका गुणगान कर रहे थे ॥५॥

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम् ।
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योभिरेभिरे ॥६॥

हे राजन् ! समस्त व्रजनारियोंने उस प्रकार सर्वप्राणियोंकी मनोहारी वंशीध्वनि श्रवण करनेके पश्चात् वर्णन करते-करते परमानन्दमय विग्रह श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया था ॥ ६ ॥

गोप्य ऊचु—

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननु विवेशयतोर्वयस्यैः ।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥७॥

गोपियोंने कहा—हे सखियों ! आँखोंसे युक्त व्यक्तियोंके लिए इस प्रकारका प्रियदर्शन ही यथार्थ फल समझना चाहिए--इसको छोड़कर और कोई दूसरा फल नहीं है । जो लोग वयस्यगणों (सखागणों) के साथ वनमें गौचारणकारी रामकृष्णके वेणुवादनरत स्निग्ध कटाक्ष-वर्षणयुक्त सुन्दर वदनमण्डलके दर्शन किए हैं, उन्होंने निश्चय ही इसका अनुभव करने का सामर्थ्य प्राप्त किया है ॥ ७ ॥

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ।
मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥८॥

दूसरी गोपियोंने कहा- हे सखियों ! एक दिन ये रामकृष्ण गोपाल बालकोंकी सभा में गान करते-करते नटवर युगलोंकी तरह शोभा पा रहे थे । उस समय उनके परिधेय वसनोंके बीच-बीचमें आम्र पल्लव, मयूरपुच्छ, पत्रपुष्पगुच्छ, उत्पल एवं कमलकी माला संलग्न रहने के कारण उनके द्वारा उनका वेश अत्यन्त विचित्र हुआ था ॥८॥

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ।
भुक्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥९॥

दूसरी गोपियोंने कहा - हे सखियों ! हम नहीं जानतीं इस वेणुने पूर्वमें कितना पुण्यका आचरण किया था, जो आज वह केवलमात्र गोपी लोगोंके उपभोग्य श्रीकृष्णके अधरामृतका स्वतन्त्र भावसे प्रचुर परिमाणमें पान कर केवलमात्र उसमें कुछ रस अवशिष्ट रखा है । जिनके जलपान द्वारा पूर्वमें यह वेणु-वृक्ष पुष्ट हुआ था, मातृतुल्या वे सभी नदियाँ भी आज उसका सौभाग्य दर्शन कर विकसित कमलोंद्वारा रोमाञ्चित हो रही हैं । कुलवृद्ध लोग जिस प्रकार अपने वंशमें भगवद्भक्त सन्तान देखकर रोमाञ्चित होकर आनन्दाश्रु विसर्जन करते हैं, उसी प्रकार जिनके वंशमें इस वेणुने जन्मग्रहण किया है, वे वृक्ष भी आज मधुधारा वर्षण-छलसे आनन्दाश्रु बहा रहे हैं ॥ ९ ॥

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्त्तिं यद् देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।
गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥१०॥

और कोई गोपियाँ कहने लगीं—हे सखि ! यह वृन्दावन भूमि इस समय यशोदासुत श्रीकृष्णके पादपद्मयुगल द्वारा परम शोभा प्राप्त हुई है । यहाँ मोर श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि सुनकर मेघगर्जन समझकर मत्त होकर नृत्य करने पर उन्हें देखकर गोवर्द्धन पर्वतकी तल-

हटीमें रहनेवाले अन्यान्य प्राणिगण भी निश्चेष्ट होकर अवस्थान कर रहे हैं । अतएव यह वृन्दावन स्वर्गसे भी अत्यन्त अधिक रूपसे पृथिवीकी कीर्त्ति विस्तार कर रहा है ॥१०॥

धन्याः स्म मूढ़मतयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनन्दमुपात्तविचित्रवेषम् ।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥११॥

दूसरी कोई गोपियाँ कहने लगीं—जो सभी हरिणियां वंशीध्वनि सुनकर अपने पति कृष्णसार मृगोंके साथ मनोहरवेशधारी श्रीकृष्णके प्रति सप्रणय अवलोकनके द्वारा उनकी पूजा कर रही हैं, वे नीच योनिमें उत्पन्न होने पर भी धन्य हैं ॥११॥

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम् ।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥१२॥

और गोपियाँ कहने लगीं—हे सखियों ! आकाशमें विचरनेवाली देवाङ्गनाएँ भी कामिनीजनमोहन रूप और स्वभावसम्पन्न श्रीकृष्णका दर्शन कर एवं उनके द्वारा बजाये जानेवाले वेणुके परम मधुर संगीतका श्रवण कर काम प्रभावसे धैर्यहीन होकर मोह प्राप्त हो रही हैं । उस समय उनके वेणीबन्धनसे कुसुम राशि एवं कटिप्रदेशसे वस्त्र-ग्रन्थि स्खलित हो रही है ॥१२॥

गावश्च कृष्णमुखनिर्यतवेणुगीतपीयूषमत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः ।
शावाः स्नुतस्तनपयःकवलाःस्मतस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥१३॥

दूसरी व्रजनारियाँ कहने लगीं—ये गौएँ एवं मातृस्तनसे निकलनेवाले दूधके पानमें रत बछड़े खड़े एवं ऊँचे किये कानों द्वारा श्रीकृष्णमुख-निर्गत वंशीसंगीत-सुधा पान करते करते दृष्टि द्वारा उन्हें हृदयके भीतर आलिंगन करते हुए अश्रुपूर्ण आँखोंके साथ अवस्थान कर रहे हैं ॥१३॥

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन् कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥१४॥

दूसरी गोपियोंने कहा—हे मातः ! इस वनमें जो सभी विहङ्ग या पक्षियाँ वास-कर रही हैं, वे संभवतः पूर्वजन्म के मुनि होंगे । क्योंकि मुनि लोग जिस प्रकार श्रीकृष्ण दर्शन प्राप्त करनेके लिए वेदोक्त सभी कर्म त्याग कर वेदरूपी वृक्षकी शाखापर आरूढ़ होकर अन्यवाक्यसे विमुख होकर सुरम्य प्रवालरूप सभी कर्म ग्रहण कर सुखके साथ केवलमात्र श्रीकृष्णगीत श्रवण करते हैं, उसी प्रकार ये भी श्रीकृष्ण-दर्शन जिस तरहसे हो, उसीके अनुरूप वृक्ष शाखापर आरूढ़ होकर अन्य शब्दोंकी ओर ध्यान न देकर आँखे मूंदकर केवलमात्र कृष्णकृत कलवेणु संगीतका ही श्रवण कर रही हैं ॥१४॥

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥१५॥

सचेतनकी तो बात क्या कहें, ये अचेतन नदियाँ भी श्रीकृष्णका वंशीसंगीत सुनकर उसी समय तरङ्गरूप हाथों द्वारा कमलरूपी उपहार लेकर उनके पादयुगलको धारण कर रही हैं एवं उस आलिंगन द्वारा श्रीकृष्णका पदयुगल आच्छादित हो रहा है। तरङ्गोंके सभी आवर्त्तद्वारा उनका कामवेग देखा जा रहा है एव इसी कामवेगके कारण उनका वेग भी भग्न हो रहा है ॥१५॥

दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून् सह रामगोपैः संचारयन्तमनु वेणुमुदीरयन्तम् ।
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम् ॥१६॥

ये मेघमण्डल बलदेव एवं गोपोंके साथ धूपमें व्रजपशु-चारणरत अनुक्षण वंशी-वादनपरायण श्रीकृष्णका दर्शन कर प्रेमसे परिपूर्ण होकर उनके ऊपर उदित हो रहे हैं एवं पुष्पराशितुल्य हिमराशि एवं अपने शरीरद्वारा मानो उनके ऊपर छत्र धारण कर रहे हैं ॥१६॥

पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन ।
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥१७॥

ये सभी शबर स्त्रियाँ भी कृतार्थ हो रही हैं। क्योंकि श्रीकृष्णकी प्रियाओंके स्तन-भूषणरूप कुंकुमराशि रतिकालमें उनके (श्रीकृष्णके) पदयुगलस्पर्शसे अत्यधिक सौन्दर्य प्राप्त कर पश्चात् भ्रमणकालमें तृण संलग्न होने पर उसका दर्शन कर इन शबर स्त्रियोंमें काम-वेदना उदय होनेसे वे इस कुंकुमद्वारा मुख और स्तनमण्डल लेपन कर अपनी काम-व्यथा दूर कर रही हैं ॥१७॥

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत् पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥१८॥

अबलाओं ! क्योंकि यह गोवर्द्धन पर्वत रामकृष्णके चरणस्पर्शसे आनन्दित होकर पानीय, उत्तम तृण, कन्दर, कन्द, मूल आदिके द्वारा गौ एवं गोपालगणोंके साथ उनकी पूजा कर रहा है। अतएव यह पर्वत हरिभक्तोंमें श्रेष्ठ है ॥१८॥

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥१९॥

हे सखियों ! सभी गौओंके पादबन्धन-रज्जु एवं पाश लक्षणयुक्त ये रामकृष्ण गोपाल-गणोंके साथ प्रति वनमें गोचारणकालमें मधुर पदमय वंशीध्वनि करने पर प्राणियोंमें जो गतिशील हैं, वे स्पन्दनशून्य होकर स्थावर-धर्म ग्रहण करते हैं और जो स्थावर

वृक्षादि हैं, वे पुलकके कारण जङ्गम धर्म धारण किए हैं—यह बड़ी विचित्र बात है ॥१९॥

एवम्विधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः ।
वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥२०॥

गोपियाँ वृन्दावनविहारी भगवान श्रीकृष्णकी इस प्रकार लीला-वर्णनके साथ-साथ तन्मयताको प्राप्त हुईं ॥२०॥

॥ इति गोपिकानां श्रीकृष्ण-महिमा वर्णनं समाप्तम् ॥
॥इति गोपियोंका श्रीकृष्णमहिमा-वर्णन समाप्त ॥

मुरलीका अलौकिक प्रभाव

सुनिए, सुनिए हो हरि ध्यान, सुधा रस मुरली बाजै ।
स्याम अधर पै बैठि बिराजति, सप्त सुरन मिलि साजै ॥१॥
बिसरी सुधि बुधि गति सबहिनि, सुनि बेनु मधुर कल गान ।
मन गति पंगु भईं ब्रज जुबतीं, गंधर्ब मोहे तान ॥२॥
खग मृग थके फलनि तृन तजि कैं, बछरा पियत न छीर ।
सिद्ध समाधि थके चतुरानन लोचन मोचत नीर ॥३॥
महादेव की नारी छूटी, अति ह्वै रहे अचेत ।
ध्यान टरयो, धुनि सौं मन लाग्यौ, सुर मुनि भए सचेत ॥४॥
जमुना उलटि बही अति ब्याकुल, मीन भए बलहीन ।
पसु पच्छी सब थकित भए हैं, रहे इकटक लौलीन ।५॥
इंद्रादिक, सनकादिक, नारद, सारद, सुनि आबेस ।
घोष तरुनि आतुर उठि धाईं, तजि पति पुत्र अदेस ॥६॥
श्रीवृन्दावन कुंज कुंज प्रति अति बिलास आनन्द ।
अनुरागी पिय प्यारी कें सँग रस राँचैं सानन्द ॥७॥
तिहूँ भुवन भरि नाद प्रकास्यौ, गगन धरनि पाताल ।
थकित भए तारागन सुनि कैं चन्द भयौ बेहाल ॥८॥
नटवर भेष धरैं नँदनन्दन निरखि बिबस भयौ काम ।
उर बनमाल चरन पंकज लौं, नील जलद तन स्याम ॥९॥
जटित जराव मकर कुंडल छबि, पीत बसन सोभाइ ।
बृन्दावन रस रास माधुरी निरखि सूर बलि जाइ ॥१०॥

—*—

प्रश्नोत्तर

(नामाभास)

१—नामाभासके द्वारा क्या शुभोदय होता है ?

"नामाभासके द्वारा सर्व प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं। समस्त पाप और अनर्थ दूर होने पर भक्तकी जिह्वा पर शुद्ध नाम नृत्य करते हैं। उस समय शुद्ध नाम उन्हें कृष्ण प्रेम प्रदान करते हैं।"

—'नामग्रहण-विचार', ह० चि०

२—मायावादीके द्वारा उच्चारित कृष्ण-नामाक्षर क्या कृष्णनाम नहीं है ?

"मायावादियों द्वारा उच्चारित कृष्ण-नाम कृष्णनाम नहीं है। वह केवल कृष्ण-नामका प्रतिबिम्ब आभासमात्र है। अतएव कृष्णनाम उच्चारण करके भी मायावादी लोग नामापराध दोष द्वारा पतित है।"

—'मायावादी कौन है ?' स० तो० ५।१२

३—प्रतिबिम्ब और छाया नामाभासमें क्या भेद है ?

"शास्त्रोंमें अनेक स्थानोंमें नामाभास, वैष्णवाभास, श्रद्धाभास, भावाभास, रत्याभास, प्रेमाभास, मुक्त्याभास आदि शब्द पाये जाते हैं। सर्वत्र 'आभास' शब्दका एक सुन्दर अर्थ है, वही इस प्रकरणमें विचारित हुआ है। यथार्थतः 'आभास' दो प्रकारका है—स्वरूप-आभास और प्रतिबिम्बाभास। स्वरूपाभासमें वस्तुकी पूर्णकान्ति संकुचित रूपसे प्रकाशित होती है। जैसे--मेघाच्छन्न सूर्यकी अल्प कान्तिद्वारा अल्प प्रकाश प्राप्त होता है। प्रतिबिम्बाभासमें स्वरूपकी विकृतिमात्र अन्याकारमें उदित होती है। यथा—'आभास्तु मृषाबुद्धिरविद्या-कार्यमुच्यते। जलसे प्रतिबिम्बित प्रकाश जिस प्रकार उच्छलित होकर प्रकाशित होता है, उसी तरह। नाम-सूर्य जीवके अज्ञान और अनर्थ रूप कुहरे और मेघसे जब तक आच्छादित हैं, तब तक उन सूर्यका संकुचित अति क्षुद्र प्रकाश देखा जाता है। इस अवस्थामें जगतमें नामाभास अनेक प्रकारके शुभ फल प्रदान करते हैं। वही नाम-ज्योतिः मायावाद ह्रदसे प्रतिबिम्बित होनेपर प्रतिबिम्ब नामाभास होता है। उससे सायुज्यादि फल प्राप्त होनेपर भी नामके चरम फलरूप प्रेमकी उत्पत्ति नहीं होती। यह नामाभास एक प्रधान नामापराध होनेके कारण इसे नामाभास कहा नहीं जाता। केवल छाया नामाभासको ही नामाभास कहकर चार विभागोंमें विभक्त किया गया है। हेय प्रतिबिम्ब नामाभासको दूर कर नामाभासकी मान्यता सभी शास्त्रोंमें देखी जाती है। अज्ञानजनित अनर्थसे छाया-नामाभास, दुष्ट-ज्ञानजनित अनर्थसे प्रतिबिम्ब नामाभास रूप भक्तिबाधक अपराध विचारित हुआ है। वैष्णवप्राय

अर्थात् वैष्णवाभास व्यक्तिको वैष्णव न कहने पर भी उसमें मायावाद रूप अपराध न रहनेके कारण उसे कनिष्ठ या प्राकृत भक्त कहकर सम्मान किया जाता है। क्योंकि सत्सङ्ग द्वारा उसका शीघ्र मंगल हो सकता है। इसलिए शुद्ध भक्त लोग उन्हें त्रिवर्गगत बालिश कहकर कृपा करेंगे। विद्वेषी मायावादीके समान उसकी उपेक्षा न करेंगे। उनकी लौकिकी श्रद्धासे अर्चामात्रकी पूजा-प्रवृत्तिको बढ़ाकर भगवत्-भागवत सेवोपयोगी सम्बन्ध-ज्ञान सम्वलित भक्ति-दान करेंगे। तब यदि उनमें अच्छेद्य मायावाद विश्वास देखा जाय, तब उनकी अवश्य उपेक्षा करेंगे।"

—'नामाभास-विचार' ह० चि०

४—सर्व प्रकारके शुभ कर्मोंकी अपेक्षा नामाभास प्रशस्यतर क्यों है?

"नामाभास जीवोंकी प्रधान सुकृति है। धर्म, व्रत, योग, होमादि सर्व प्रकारके शुभ कर्मोंकी अपेक्षा नामाभास श्रेष्ठ फल-प्रद है।"

—नामाभास-विचार', ह० चि०

५—नामाभासका क्या फल है?

वैकुण्ठादि लोकप्राप्ति नामाभासे हय।
विशेषतः कलियुगे सर्वशास्त्रे कय॥
'नामाभास-विचार' ह० चि०

अर्थात् नामाभाससे वैकुण्ठादि लोक प्राप्त होते हैं। विशेषकर कलियुगमें इस बातमें कोई आशंका नहीं है।"

६—नामाभास कितने प्रकारका है और उनमें तारतम्य क्या है?

"संकेत, परिहास, स्तोभ और हेला—ये चार प्रकारके कार्योंके साथ नाम उच्चारित होने पर नामाभास होता है। उस उस कार्यके साथ नामाभास चार प्रकारका है। हेलाकी अपेक्षा स्तोभ, स्तोभकी अपेक्षा परिहास एवं परिहासकी अपेक्षा संकेत अल्प-दोषावह है।"

—'नामाभास-विचार' ह० चि०

७—नामाभासकी कब निवृत्ति होती है?

"सम्बन्धत त्वेर ज्ञान जावत् ना हय।
तावत् से नामाभास जीवेर आश्रय।"
—ह० चि० ३रा प०

अर्थात् जब तक सम्बन्ध तत्त्वका ज्ञान नहीं होता, तब तक जीव नामाभासके आश्रय में रहते हैं।

८—आभास कितने प्रकारका है?

"नामरूप सूर्यके दो प्रकारके आभास हैं अर्थात् नाम-छाया और नाम-प्रतिबिम्ब। विज्ञ व्यक्ति 'भक्त्याभास', 'भावाभास', 'नामाभास', वैष्णवाभास - इन शब्दोंका व्यवहार सब समय करते हैं। सर्व प्रकारके आभास ही 'प्रतिबिम्ब' और 'छाया' भेदसे दो प्रकारके हैं।"

—जै० ध० २४वाँ अ०

९—'वैष्णवप्राय' किसे कहते हैं?

"वैष्णवप्राय शब्दका यही अर्थ है कि यथार्थ वैष्णवोंकी तरह माला-मुद्रादि धारण-पूर्वक 'नामाभास' करते हैं, किन्तु वे यथार्थ या शुद्ध वैष्णव नहीं हैं।"

—जै० ध० २५वाँ अ०

१०—नामाभास किस अवस्थामें नामापराध होता है? उसका क्या फल क्या है? 'शुद्ध नाम न होने पर ही 'नामाभास' होता है। यह नामाभास किसी अवस्थामें नामा-

भास कहा जाता है, किसी अवस्थामें नामापराध कहा जाता है। जिस स्थलमें अज्ञताके कारण अर्थात् भ्रम-प्रमाद आदि दोषोंके कारण नामका अशुद्ध लक्षण हो, वह केवल 'नामाभास' है। जिस स्थलमें मायावादादि द्वारा उत्पन्न धूर्त्तता, मुमुक्षा और भोग-वांछा से अशुद्ध नामका उदय हो, वहाँ नामापराध होता है। मैंने तुम दोनोंको जो दस प्रकारके नामापराध बतलाये हैं, वे यदि सरलता या अज्ञतासे हो जाय, तो वे सभी 'नामाभास' मात्र हैं। यही जानना होगा कि नामाभास जब तक अपराध लक्षण प्राप्त न हो, तब तक नामाभास दूर होकर शुद्ध नामोदयकी आशा रहती है। अपराध-लक्षण होने पर सहज ही नामोदय नहीं होता। नामापराध क्षयको जो पद्धति कही गई है, उसको छोडकर दूसरे उपाय द्वारा मगल नहीं होता।"

—जै० ध० २५वाँ अ

११—सांकेत्य नामाभासका उदाहरण-स्थल क्या है ?

"अजामिलने मृत्यु समयमें अपने पुत्रको 'नारायण' कहकर पुकारा था। कृष्णका नाम नारायण होने के कारण अजामिलको सांकेत्य नामग्रहणका फल प्राप्त हुआ था।"

—जै० ध० २५वाँ अ०

१२—स्तोभ नामाभास का क्या उदाहरण है ?

"एक सुवैष्णव हरिनाम उच्चारण कर रहे हैं, उस समय एक पाषण्ड व्यक्ति आकर कदर्य-मुख-भङ्गि कर कहने लगा— 'हाँ, तुम्हारा हरि कृष्ण सब कर लेगा !' यही स्तोभका उदाहरण है। उसमें भी उस पाषण्डी को मुक्ति तक मिल सकती है—नामाक्षर का यही स्वाभाविक बल है।"

—जै० ध० २५वाँ अ०

१३—'हेलन' में किस प्रकार नामाभास होता है ?

"धूर्त्तताके साथ 'हेलन' होने पर 'अपराध' होता है और अज्ञानके साथ हेलन होने पर 'नामाभास' है।"

—जै० ध० २५वाँ अ०

१४—नामाभास द्वारा क्या-क्या फल प्राप्त हो सकता है ?

"भुक्ति, मुक्ति, अठारह सिद्धियोंके अन्तर्गत सभी फल ही नामाभाससे प्राप्त होते हैं, कृष्णप्रेमरूप परम पुरुषार्थ नामाभाससे प्राप्त नहीं होता।"

—जै० ध० २५ वाँ अ०

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी विचार-प्रणालीकी सर्वश्रेष्ठता

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदायते ।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः ॥

बंगालके अधिकांश व्यक्ति ही श्रीचैतन्य-देवका नाम जानते हैं । साधारण रूपसे वे प्रेमधर्मके प्रचारक और गौड़ीय वैष्णवोंके आराध्य हैं—यह बात अधिकांश व्यक्ति ही जानते हैं। जो लोग श्रीचैतन्यदेवके अधस्तन परिचयसे अपनेको जानकर श्रीचैतन्यदेवकी कथामें अवस्थित समझते हैं, वे लोग यथार्थ रूपसे उस विषयसे अनभिज्ञ हैं । वे लोग सोचते हैं कि चैतन्यदेवकी विचार धारामें दार्शनिक कथाका कुछ अभाव है।

विभिन्न पथावलम्बी व्यक्ति लोग श्रीचैतन्यदेवकी बातोंकी आलोचना न करनेके कारण नाना प्रकारके मनोधर्मकी पंथाके प्रति अनुरक्त हुए हैं । श्रीचैतन्यदेवकी बात कानोंमें प्रवेश न करने के कारण ही कुछ लोग ब्रह्मसमाज, थियोसफी आदि भिन्न-भिन्न नवीन पथोंमें गमन किये हैं अथवा कर रहे हैं। यथार्थ चैतन्यानुगत व्यक्तियोंके प्रकृष्ट संगसे यदि श्रीचैतन्यदेवकी वाणी—उनकी भक्तिसिद्धान्त विचारधारा उनके कानोंमें प्रविष्ट होती तो इसप्रकार अन्यपथमें गमन रूप परम दुर्भाग्य बंगदेशवासियोंको प्राप्त न होता । श्रीचैतन्यदेवके अन्तर्द्धानके पश्चात् विभिन्न-धर्म पंथियोंका उदय हुआ है और हो रहा है। ये सभी धर्म-पंथी लोग सोचते हैं कि चैतन्यदेवकी अपेक्षा उन लोगोंके प्रति जनसाधारणमें अधिक आदर होगा। क्योंकि वे लोग मनोधर्मके अनुकूल हैं, इन्द्रिय-तृप्तिकर सिद्धान्तद्वारा लोगोंके चित्तरंजन करनेमें समर्थ हैं । किन्तु एकमात्र श्रीचैतन्यदेवकी कथासे ही जगतके विभिन्न धर्मस्रोतके परस्पर विवदमान भाव दूर हो सकते हैं । महावदान्य श्रीचैतन्यदेवकी अमन्दोदया दयासे ही जीवोंके सभी प्रकार अमंगल विनष्ट होकर परा शान्ति मिल सकती है।

वे सोचते हैं कि जिस धर्ममें मुक्तिवाद स्वीकृत नहीं हुआ है, वह मुक्तिवादकी दूसरी दिशा मात्र है। किन्तु भुक्ति-मुक्ति जीवोंके चरम लक्ष्य नहीं हो सकतीं; बल्कि मुक्ति ही भुक्ति की दूसरी दिशा है । 'भुक्ति' और 'मुक्ति' दोनों ही पिशाची तुल्य हैं। दोनों ही जीवोंको आस्तिकतासे विच्युत कर देती हैं। भगवद् विश्वासी व्यक्ति—आस्तिक लोग कदापि भुक्ति-मुक्ति पिशाचीका आश्रय नहीं लेते । भगवद् भक्त लोग स्वभावतः ही मुक्त है । अतएव मुक्त पुरुषोंको मुक्तिकी क्या आवश्यकता है ?

हम लोग श्रीचैतन्यदेवके आचरणमें मुक्त जीवोंके कृत्य देख पाते हैं । हम-लोग बद्ध जीवोंके कृत्य भी श्रीचैतन्यदेवकी उपदेशावलीमें प्राप्त कर सकते हैं।

सूक्ष्म रूपसे अनुशीलन करने पर जाना जा सकता है कि भोग और मोक्ष दोनों ही आत्मा के लिए अप्रयोजनीय विषय हैं। भोग और त्याग दोनों ही त्याज्य हैं। श्रीमद्भागवत (११।२०।८) में यही बात कही गई है—

"न निर्विन्नो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ।'

अर्थात् जो अत्यन्त निर्विन्न (अत्यन्त विरक्त या फल्गु वैराग्ययुक्त) नहीं हैं एवं संसारमें अत्यन्त आसक्ति युक्त नहीं हैं, ऐसे व्यक्तियों के लिए ही भक्तियोग द्वारा प्रेमभक्ति रूपा सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

हमलोगोंके निकट कई समय यह बड़ा ही आश्चर्यका विषय जान पड़ता है कि जिन भगवानको यहाँ पाया नहीं जा सकता, उनकी सेवा भी करनी पड़ेगी ! और जिन्हें हम देखते हैं और स्पर्श करते हैं, उनकी आवश्यकता नहीं है। यह कैसी बात है ? किन्तु आँखोंद्वारा, इन्द्रियोंद्वारा, मनके द्वारा जिस वस्तु का हम लोग भोग करते हैं, वह भगवान नहीं है। तब क्या जाड्य ही हमारा लक्ष्य है ? वह भी नहीं है। श्रील रूपगोस्वामीको महाप्रभुने बतलाया था—

'अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः ।'

दार्शनिक पण्डित लोग जिन्हें 'परमार्थ' या 'तत्व' वस्तु कहते हैं, वह 'परमार्थ' नहीं है—यही चैतन्यदेवकी वाणी है। श्रीचैतन्य-चरितामृतमें (मध्यलीला २५।५५) कहा गया है—

"ताते छय दर्शन हइते 'तत्त्व' नाहि जानि ।
'महाजन' जेइ कहे, सेइ 'सत्य' मानि ॥"

सेवा की उन्मुखता होनेपर स्वयं-प्रकाश भगवानके नाम, रूप, गुण, लीला आदि हमारे निकट प्रकाशित होते हैं। मानव ज्ञान द्वारा उत्पन्न धर्म समूहकी एक सूची प्रस्तुत कर उनकी विचार-प्रणाली और सिद्धान्तों का विचार करनेपर हम यह जान सकेंगे कि श्रीमद्भागवत-कथित सनातन धर्म या श्रीचैतन्यदेव कथित परमधर्मको छोड़कर अन्यान्य सभी मानव ज्ञानोत्पन्न धर्मोंमें काल्पनिकता और कपटता भरपूर हैं। भागवत-धर्म या श्रीचैतन्यदेव द्वारा प्रचारित विमल आत्मधर्म ही एकमात्र कपटताशून्य-और परम निर्मत्सर साधुओंद्वारा अनुमोदित, आचरित सनातन-श्रौत धर्म है। आजकल जो सभी धर्मकी बातें प्रचलित हैं वे मानवकल्पित या मनोधर्म मात्र हैं—कोई भी आत्मधर्म नहीं है।

परम पुरुष भगवान किस प्रकार नाम, रूप, गुण, लीला विशिष्ट हैं—जो लोग उसकी कल्पना करने की चेष्टा करते हैं, उनकी वैसी चेष्टा दाम्भिकता मात्र है। ऐसी कल्पना वास्तव वस्तु ईश्वरके वास्तव रूप, गुण और लीलाके साथ एक नहीं हो सकती। ईश्वर हमारे मनरूपी कारखानेमें गठित एक पुतली विशेष नहीं हैं। मैं यदि अपने मनोधर्म द्वारा अपने मनकी रुचिके अनुसार अपने इन्द्रिय भोग्य जिस किसी रूपका गठन कर लूँ, तो उन्हें (भगवानको) वही बनना पड़ेगा ? जो लोग स्वयंप्रकाश भगवानके वास्तव स्वरूपमें विश्वास नहीं करते, वे ही इस प्रकारके मनोधर्म का अनुमोदन करते हैं। मानव ज्ञान जिस प्रकार 'साकार', 'निराकार' की कल्पना कर रहा है, वह भगवानके वास्तव स्वरूपके साथ एक नहीं है। वैकुण्ठके

समतलमें 'कुण्ठ धर्म' नहीं है। किन्तु वैकुण्ठके हेय प्रतिफलनरूप इस मायिक प्रपञ्चमें सर्वत्र कुण्ठ धर्म है।

इस जगतके चिन्ता-स्रोतका निर्विशेष धारणा तक ही पहुँच है। किन्तु श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूपगोस्वामीको शिक्षा दी—

"ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।
गुरु कृष्ण प्रसादे पाय भक्तिलता बीज॥
माली हैञा करे सेइ बीज आरोपण।
श्रवण कीर्तन जले करये सेचन॥
उपजिया बाड़े लता ब्रह्माण्ड भेदि जाय।
'विरजा', 'ब्रह्मलोक' भेदि 'परव्योम' पाय॥
तबे जाय तदुपरि "गोलोक-वृन्दावन"।
'कृष्ण-चरण कल्पवृक्षे' करे आरोहण॥"
(चै० च० मध्य० १९। १५१—५४)

जिस स्थान में त्रिकालकी बात समन्वित (neutralised) हुई है, वही विरजा है। परव्योम लक्ष्मीपति नारायणका ऐश्वर्य धाम है। प्रद्युम्नादि तुरीय व्यूह रूपसे सेव्य वस्तुमें विराजित हैं। गौरव सख्य तक इस स्थानका रस है।

पिता-मातासे श्रीकृष्णने जन्म ग्रहण नहीं किया। 'कृष्ण' से ही पिता माता का जन्म हुआ है। एकमात्र कृष्ण ही मूल पुरुष हैं। नारायणकी पूजा और श्रीकृष्णकी सेवा-प्रणाली एकजातीय नहीं है। कृष्ण गोपपालकोंके प्रेमका लोभ संवरण न कर पाकर उनके निकट उपस्थित रहते हैं। भगवानकी प्रेम सेवा केवल पूज्य-पूजक बुद्धिमें आबद्ध नहीं है। वत्सल रसकी सेवा-प्रणाली अर्चनमार्गके अर्चकोंद्वारा जानी नहीं जा सकती।

कान्ताओंकी बात, उन सभी कान्ताओं में भी सर्वकान्ता-शिरोमणि वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाकी बात और भी चमत्कारपूर्ण है। कान्ताएँ कृष्णका आह्वान सुनकर आत्मविस्मृत हो उठीं और कृष्णके समीप दौड़ पड़ीं। उन्होंने इधर उधर दृष्टिपात तक नहीं किया—घरके सब काम पड़े रह गये; जो जिस अवस्थामें थीं, उसी अवस्थामें कृष्णकी ओर दौड़ पड़ीं।

हमारी आत्मवृत्ति यदि परिस्फुट हो जाय, तब ही हम लोग व्रजकी कान्ताओं, व्रजके पिता, माता और सखाओंके आनुगत्यमें अधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

ये सभी अधोक्षज वस्तुकी सेवाकी बात है। कृष्णकी सेवा करनी होगी, किन्तु कृष्णके प्रति भोगबुद्धि न करनी होगी। भोग बुद्धि सेवा नहीं है। प्राकृत सहजियाओंकी कृष्णके प्रति भोग बुद्धि अप्राकृत सेवा-धर्म रहित है। जड़ेन्द्रियोंद्वारा अधोक्षज वस्तु कृष्णको भोग नहीं किया जा सकता। कृष्णकी सेवा जीवोंका भोग्य कार्य-विशेष नहीं है। जड़भोगी मनुष्य जातिके व्यक्ति श्रीचैतन्यदेव की बातों को न समझकर भगवानके द्वारा अपनी भोगवृत्ति चरितार्थ करने की चेष्टा कर रहे हैं। निजेन्द्रिय-प्रीति-साधन का नाम ही भोग है।

"आत्मेन्द्रिय-प्रीति वाञ्छा तारे बलि काम।
कृष्णेन्द्रिय-प्रीति इच्छा धरे प्रेम नाम॥"

कर्मकाण्ड या ज्ञानकाण्ड परायण व्यक्ति लोग श्रीचैतन्यदेवकी बात न समझकर उनकी निन्दा करते हैं अथवा मनोधर्मकी बातोंके साथ भक्तिकथाको एक समझते हैं।

"शुष्क ब्रह्मे नाहि कृष्णेर सम्बन्ध ।
सर्व लोक निन्दा करे, निन्दाते निर्बन्ध ॥"

कर्म या ज्ञानकाण्ड द्वारा आत्मवृत्तिका उन्मेष नहीं हो सकता। वहाँ मनोधर्मकी ही प्रबलता है । कर्मकाण्डमें प्राकृत प्रवृत्ति का ही ताण्डव नृत्य है । आत्मप्रतीति विशिष्ट व्यक्ति ही श्रीहरिकी सेवा करते हैं। जब हमारा स्थूल ज्ञान विलुप्त हो जायेगा, तब हमारे निर्मल चित्तद्वारा हम भगवानके सेवा-वैचित्र्य की उपलब्धि करके प्रेमाञ्जनच्छुरित भक्ति-विलोचनद्वारा अधोक्षज श्रीश्यामसुन्दरके अप्राकृत रूपका दर्शन कर कदापि श्रीश्याम-सुन्दरकी सेवा नहीं छोड़ेंगे बल्कि और भी नवनवायमान रूपसे नये उत्साहके साथ सेवा करते रहेंगे।

हम लोग कई समय ऐसा सोचते हैं कि भगवानको सुख मिलने से मेरा क्या होगा ? सेवा जब केवल भगवानका सुखसन्धान-मात्र है, तब सब कुछ छोड़कर ध्यान-धारणाद्वारा आत्मसुखानुसंधान करना ही अच्छा है । ब्रह्म के साथ एकीभूत हो जानेपर ही हमारा मंगल होगा। हम लोग कई समय इस प्रकार के आत्मविनाशको अपना मंगल समझकर निर्भेद ज्ञानी हो पड़ते हैं। यदि किसी व्यक्ति के पाँवमें फोड़ा हो जाय एवं चिकित्सक उसके गलेमें छुरी देकर फोड़ेकी यन्त्रणासे चिरनिवृत्त होने के लिए परामर्श दे, तो इस प्रकारके कार्यका किसी-किसी पण्डिताभिमानी अविवेकी व्यक्तिद्वारा अनुमोदन करनेपर भी वह मूर्खता प्रकाशक मात्र है । असुरमोहन कल्पमें विष्णुके अवतार बुद्ध या शंकरावतार आचार्य शंकरने इस प्रकारके आत्मविनाशके द्वारा आत्यन्तिक दुःख निवृत्तिकी बात जगत में प्रचार की है; किन्तु अमन्दोदया दया वितरणकारी महावदान्य भगवान श्रीचैतन्य-देवने उस प्रकारकी मूर्खताकी बात नहीं कही । श्रीमूर्तिकी सेवा, श्रीवैष्णवसेवा, श्रीनामसेवाके द्वारा जीवोंका परम मंगल होता है। श्रीचैतन्यदेवने कहा है कि जिनकी सेवोन्मुखी जिह्वामें एकबार मात्र श्रीकृष्ण नाम सुना जाय, वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं । देवोधाम के सर्वश्रेष्ठ पुण्य कर्मी और ज्ञानीकी अपेक्षा श्रीविष्णुके नामात्मक मन्त्र द्वारा अर्चनकारी कनिष्ठ भक्त श्रेष्ठ है। क्योंकि कर्मी और ज्ञानी कितने भी श्रेष्ठ क्यों न हों, उनका वास्तव-वस्तु श्रीविष्णुके नित्य सेव्यत्वमें विश्वास नहीं है। इसलिए मुखसे वेद मानने पर भी वे यथार्थमें नास्तिक हैं और विष्णुके अर्चक अप्राकृत भजनराज्यमें भले ही किंचित् अग्रसर हुए हैं, वे श्रीविष्णुकी अर्चाके वास्तव सत्य विग्रहत्वमें श्रीगुरुमुखद्वारा सुनकर उनमें श्रद्धाविशिष्ट हैं । श्रीविग्रह अर्चनकारी कनिष्ठ वैष्णव श्रीविग्रहके निकट जो एकबार घण्टा बजाते हैं, उस घण्टा वादन के साथ सहस्र-सहस्र कर्मीश्रेष्ठके असंख्य अस्पताल, दरिद्रसेवा, सेवाश्रम, विपुल कर्मकाण्डका आयोजन, निर्भेद ब्रह्मज्ञानी का ध्यान, कठिन से कठिन साधनादि तुलना नहीं किये जा सकते । यह साम्प्रदायिकता नहीं है, यह वास्तव सत्य है । वास्तव सत्यमें विश्वास-रहित नास्तिक लोग वञ्चित होकर ये सभी मर्मार्थ कदापि हृदयंगम नहीं कर सकते। अतएव वे लोग कभी तो प्रकट रूपसे भक्ति-निन्दक या कभी प्रच्छन्न निन्दक या समन्वय-वादी हो पड़ते हैं।

श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुरने श्रीचैतन्यदेव-द्वारा प्रचारित कृष्ण, कार्ष्ण और नामसेवाको बात ही बगला, अंग्रेजी, सस्कृत आदि विभिन्न भाषाओंमें जगत्में प्रकाशित की है। वैष्णव जगतमें गत २५० या ३०० वर्षके इतिहासमें हरिसेवाके नामपर इन्द्रिय परायणता देखी गई है। दो एक भजनानन्दी वैष्णवोंने अपना-अपना भजन कर इह जगत् से प्रस्थान किया। श्रील विश्वनाथ-चक्रवर्ती ठाकुरने या श्रीपाद बलदेवविद्याभूषण आदि वैष्णवाचार्योंने अपने ग्रन्थोंमें शुद्धभक्ति की बात लिखकर वैष्णव जगतका प्रचुर कल्याण किया है। किन्तु सर्वसाधारणमें शुद्धभक्तिकी कथाका प्रचार अधिक नहीं देखा गया। श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर श्रीचैतन्यदेवकी महावदान्यताकी बात सर्व साधारणमें प्रचारित करने के लिये विशेष उत्साहान्वित और यत्नवान थे। मेरे गुरु वर्ग जो यहाँ उपस्थित हुए हैं, वे सभी ही काय-मनोवाक्य द्वारा श्रीचैतन्यदेवके मनोभीष्टकी बात प्रचार करने के लिए कटिसम्बद्ध हुए हैं। वे निश्चय ही श्रीचैतन्यदेवकी कृपा प्राप्त करेंगे।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्री श्रील सरस्वती ठाकुर

—•—

भजन क्यों नहीं होता ?

हम लोग सद्गुरु प्राप्त कर भी कई समय भजनमें अग्रसर नहीं हो पाते। भजन तो दूर रहे, हमारी अनर्थ-निवृत्ति भी नहीं होती। श्रीरूप गोस्वामीपाद कहते हैं कि हमारी अनर्थ-निवृत्ति होनेके पश्चात् ही शुद्ध भजन प्रारम्भ होता है। इसलिए जिस व्यक्तिने अनर्थोंके हाथोंसे छुटकारा प्राप्त नहीं किया, वह हरिभजन किस प्रकार कर सकता है ?

हम लोग हरि-गुरु-वैष्णवोंमें बहुत ही भोगबुद्धिपरायण हैं। हम लोग सोचते हैं कि श्रीहरि, श्रीगुरुदेव या श्रीवैष्णव यदि मेरे इन्द्रियतर्पणमें सुविधा प्रदान कर सकें, तब ही वे हरि, गुरु, या वैष्णव हैं। मैं क्या हूँ—इस बातको न समझना ही ऐसी भ्रान्त धारणाकी हेतु (कारण) है। यदि मैं इस बातको समझता, तो हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सुख-सुविधा ही मेरी भी सुख-सुविधा होती, मुझमें अन्याभिलाष नहीं रहता। यह अन्याभिलाष ही भजनका विरोधी है।

हरि-गुरु-वैष्णवोंमें हमारी भोगबुद्धि इतनी प्रबला है कि हम उनकी सेवा करनेके बदले उनसे सेवा ग्रहण करनेके इच्छुक हैं। हम लोग कविता या प्रबन्ध लिखते हैं, वक्तृता करते हैं, कुछ भी कार्य करते हैं; उसके बदलेमें क्या चाहते हैं ? —प्रतिष्ठा या अपनी बड़ाई। कविता, प्रबन्धके नीचे नाम न रहने पर क्रोधसे अन्धे हो पड़ते हैं। कलम नहीं चलता; वक्तृता या पाठको वृथा गलाबाजी या परिश्रम मात्र समझकर उससे निवृत्त होते हैं।

मैंने सोचा था कि सब कुछ त्याग कर आया प्रतिष्ठा पाने के लिए। वह भी यदि प्राप्त नहीं हुई, तो निर्जन भजन ही ठीक है। मनोधर्मकी ताड़नामें ऐसा सोचकर निर्जन-भजन एवं प्रतिष्ठारूपी चण्डालिनीके पीछे मेरा मन दौड़ पड़ता है। उस 'धृष्टा श्वपचमरणी' के संग द्वारा मेरा सर्वनाश उपस्थित होता है। कई समय 'गीताका संसार' कर बैठता हूँ, कई समय वान्ताशी हो पड़ता हूँ, या कई समय गुरुसेवा छोड़कर स्वयं ही 'गुरु' सज बैठता हूँ। हममें से और कोई समझते हैं कि मैं उत्तम वादक, संगीत-निपुण या नानाविध कर्मकुशल हूँ।' इसलिये वैष्णव समाजसे यदि एक सिपारिश-पत्र प्राप्त कर मेरे संसार एवं प्रतिष्ठाकी सुविधा प्राप्त कर लूँ, तो दोनों कुलकी रक्षा हो जायगी। एक साथ ही हरिसेवा और संसारसेवा—दोनों ही सम्पन्न हो गयीं। किन्तु दुःखका विषय यह है कि प्रकाश-अन्धकार, काम-प्रेम—एक साथ रहना असभव है। जहाँ आत्मेन्द्रिय-प्रीतिवांछा लेशमात्र भी हो, वहाँ 'सेवा' नहीं है। वहां सम्पूर्ण रूप से माया का अधिकार है। जो व्यक्ति सेवाके बदले कुछ चाहे, वह सेवक नहीं है। भक्तराज प्रह्लादने कहा था—

"न स भृत्यः स वै वणिक्।"

किन्तु उससे भी दुःखकी बात यह है कि हम ऐसी बातें मुखसे कहकर भी अपने कार्य-समयमें भूल जाते हैं प्रतिष्ठा चण्डालिनीकी कैसी विमोहिनी शक्ति है!

श्रीमन्महाप्रभुजीने हमारी शिक्षाके लिए यह आचरण दिखलाया है—

"न धनं न जनं न सुन्दरीं
कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥"

किन्तु मैं सेवाके बदले धन चाहता हूँ, जन चाहता हूँ, मेरी कविता, प्रबन्ध, वक्तृताको लोग सुन्दर कहें, कविता या प्रबन्धके नीचे मेरा नाम रहे—ऐसी प्रतिष्ठा हृदयमें पोषण करता हूँ। यही क्या सेवा है? श्रीगौरसुन्दरने इसे 'सेवा' नहीं कही? श्रीरूप गोस्वामीपादने इसे तो 'सेवा' के बदले 'अन्याभिलाष' या 'कर्म' कहा है। जहाँ फल भोक्ता मैं हूँ, वहाँ सेवा कदापि नहीं है। सेवा सती सहधर्मिणीकी तरह प्रभुके सन्तोषविधानमें नियुक्ता हैं, कर्मस्पृहा एक व्यभिचारिणी वारवनिता [वेश्या] की तरह अपने इन्द्रियतर्पणके लिए लालायिता है।

हरिभजनके लिए और एक प्रतिकूल विषय यह है कि वैष्णवोंके साथ अवैष्णवों का साम्य-दर्शन। मैं कई समय सोचता हूँ कि 'अमुक व्यक्ति प्रतिष्ठा पा रहा है और जितना भी दोष है, वह केवल मेरे ही ऊपर?' ऐसी मायिक बुद्धि वैष्णव और अवैष्णवमें साम्य दर्शनके कारण होती है। यह हरिभजनका परम विरोधी है। बहुत से व्यक्ति हरिभजन करने जाकर ऐसे चिन्तास्रोतसे परिचालित होनेके कारण पतित हो जाते हैं। यही वैष्णवापराध या वैष्णवोंके प्रति मर्त्यबुद्धि है। वैष्णव लोग ही प्रतिष्ठाके अधिकारी हैं। जो भी प्रतिष्ठा है, वह उन लोगोंकी सेवा करनेके लिए लालायिता होकर सर्वदा परिचारिका की

तरह उन लोगोंकी अनुगामिनी है। किन्तु मेरे जैसे अवैष्णव, मूढ़, कामक्रोधादिमें आसक्त जीव यदि वैष्णवोंका पद, राज-राजेश्वरके योग्य आसन ग्रहण करने की चेष्टा करे, तो मायादेवी मेरी दांभिकता दिखलाकर मुझे और भी दृढ़ रूपसे अपनी शृंखलामें बाँध देगी।

अतएव यदि मैं प्रतिष्ठा चाहूँ, तो मुझे वैष्णवी प्रतिष्ठाके प्रति निष्ठावान् होना उचित है। मेरे एकमात्र प्रभु अद्वयज्ञान वस्तु भगवान और उनसे अभिन्न गुरु-वैष्णव लोग हैं। मैं उनका नित्यदास हूँ। दासकी एकमात्र धर्म प्रभु-सेवा ही है। निरन्तर निष्कपट सेवामें नियुक्त रहना ही दासका एकमात्र प्रतिष्ठा है। इसीका नाम वैष्णवी प्रतिष्ठा है। जहाँ अहैतुकी सेवारूपा वैष्णवी प्रतिष्ठाके बदलेमें दूसरी वस्तुके लिए हम लालायित हैं, वहीं जड़ प्रतिष्ठा है।

रावण जड़ प्रतिष्ठाकांक्षी व्यक्तियोंका आदर्श है। इन्द्रके इन्द्रत्व, ब्रह्माके ब्रह्मत्व आदिसे सन्तुष्ट न होकर प्रतिष्ठा-प्रमत्त-हृदय रावणने साक्षात् चिच्छक्तिस्वरूपिणी श्रीसीतादेवी तक को भी अपनी विलासिनी रूपसे ग्रहण करनेका दुःसाहस हृदयमें पोषण किया था। अर्थात् साक्षात् भगवान्के स्थानपर अधिकार प्राप्त करनेके लिए तैयार हो गया था। इसकी अपेक्षा जीवकी और क्या दुर्बुद्धि हो सकती है? किन्तु इसके फलसे उसे प्रतिष्ठा न मिलकर आत्म-विनाश ही प्राप्त हुआ। क्या रावणका उदाहरण देखकर भी हम लोग कृष्ण और कार्ष्णोंमें भोगबुद्धि करनेसे निवृत्त नहीं होते? यदि हम लोग मंगल चाहते हैं, तो ऐसी दुर्बुद्धिका परित्याग कर वैष्णवी प्रतिष्ठामें परिनिष्ठित होने के लिए यत्न करना आवश्यक है।

जिन लोगोंने श्रीहरिगुरुवैष्णवोंके चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया है, श्रीहरिगुरु-वैष्णवोंके प्रीति-विधानको ही जिन लोगोंने अपना सुख जान लिया है, जिन लोगोंने हरिगुरुवैष्णवोंको प्रतिष्ठाको ही अपनी प्रतिष्ठाके रूपमें वरण कर लिया है, जिन लोगोंने हरिगुरुवैष्णवोंसे अपना पृथक अवस्थान नहीं है—यह बात उपलब्धि कर ली है, वे लोग "वृक्षके सिञ्चिले पल्लवाद्येर कोटिसुख हय"—इस न्यायानुसारसे अपनेको हरिगुरुवैष्णवोंसे पृथक न समझकर प्रभुके सुखमें ही अपने को सुखी जानकर प्रसन्न रहते हैं, वे श्रीहरिगुरुवैष्णवोंकी प्रतिष्ठाको ही अपनी प्रतिष्ठा मानते हैं। वे लोग ही यथार्थ निर्मत्सर साधुओंके द्वारा अनुमोदित शुद्ध हरिभजन प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए हमारे लिए अद्वयज्ञान भगवान्से अपनेको पृथक् जानकर प्रतिष्ठाकी वासना करना सर्वथा अनुचित है।। यह द्वितीयाभिनेश के सिवाय और कुछ भी नहीं है। अतएव सर्वप्रकारके प्रयत्न कर प्रतिष्ठाका परित्याग करना ही हमारा परम कर्तव्य है।

(साप्ताहिक गौड़ीयसे अ. दत)

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

(द्वितीय खण्ड, प्रथम-वृष्टि)

रसविचार—प्रथम धारा

(वर्ष १६, संख्या १२, पृष्ठ २७४ से आगे)

मधुर रति—शृङ्गार या मधुर भक्तिरस-में कमनीयत्व प्रबल होकर संभ्रम, गौरव, विश्रम्भ और अनुकम्पाको[1] अपनी सत्तामें आयत्त कर लेता है। इसमें स्थायी भाव जो प्रियता नामकी रति है, वह प्रेम, प्रणय, स्नेह, राग तक भावद्वारा पुष्ट होती है। भाव एवं महाभाव इसमें उदित होते हैं। साधन-कालमें जीवकी जैसी वासना होती है, उसीके अनुसार उसकी रति[2] होती है। स्वार्था-परार्था भेदसे, सामान्या, स्वच्छा और शान्ति भेदसे, केवला-शंकुला भेदसे —ये जो सभी भेदसे रतिके सम्बन्धमें विचार किया गया है, वह यहाँ अधिक नहीं दिखलाया गया। इस ग्रन्थमें समस्त विषयकी शिक्षा होगी —ऐसा इसका तात्पर्य नहीं है। केवल स्थूल विषय विवृत होकर रसतत्व क्या पदार्थ है, यही बात दिख-लायी जायगी।

विभाव—विभाव दो प्रकार का[3] है—आलम्बन और उद्दीपन। आलम्बन दो प्रकार का है—आश्रय और विषय। रति जिनमें वर्तमान है, वे उनके आधारस्वरूप आश्रय हैं। रति जिनके प्रति धावित हो वे इस रतिके विषय हैं। जीव रतिका आश्रय है। कृष्ण रतिके विषय हैं। इसलिए हमारी विचार्य रतिको कृष्णरति कह सकते हैं। वह रति रसता प्राप्त होने पर इस रसको कृष्णभक्तिरस कहते हैं। श्रीकृष्णके गुण, वयस, मोहनता, सौन्दर्य, रूप, चेष्टा, वसन, भूषण, स्मित, शोभा, सौरभ, मुरली, शंख, पदाङ्कक्षेत्र, वृक्ष और भक्त—वे रसके उद्दीपन हैं[4]।

---

१. मिथो हरेर्भृंगाख्याश्चसंभोगस्यादिकारणम्। मधुरपरमर्याया प्रियताख्योदिता रतिः।
अस्यां कटाक्षभ्रूक्षेपप्रिय वाणीस्मितादरः॥ (भक्तिरसामृतसिन्धु)

२. यथोत्तरमसौ स्वादविशेषोल्लासमय्यपि। रतिर्वासनया स्वाद्वी भासते क्वापि कस्यचित्॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

३. तत्र ज्ञेया विभावास्तु रत्यास्वादनहेतवः। ते द्विधालम्बना एके तथैवोद्दीपनाः परे॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

४. उद्दीपानस्तु ते प्रोक्ता भावमुद्दीपयन्ति ये। ते तु श्रीकृष्णचन्द्रस्य गुणाश्चेष्टा प्रसाधनम्॥
स्मिताङ्गसौरभे वंशशृंगनूपुरकम्बरः। पदाङ्कक्षेत्रतुलसीभक्ततद्वासरादयः॥ (भक्तिरसामृतसिन्धु)

अनुभाव—जो सभी कार्य-दर्शन द्वारा रसकी अवस्थिति अनुभूत हो, वे सभी अनुभाव हैं।[१] वे तेरह प्रकारके हैं—

१ नृत्य, २) विलुण्ठित, ३) गीत, ४) क्रोशन, ५) तनुमोटन, ६) हुँकार, ७) जृंभन, ८) श्वासवृद्धि, ९) लोकापेक्षा त्याग, १०) लालास्राव, ११) अट्टहास, १२) घूर्णा और १३) हिक्का।

एककालमें ही समस्त अनुभाव लक्षण उदित हों, ऐसी बात नहीं है। जब जिस प्रकार रसकार्य अन्तरमें होता है,उसीके अनुरूप एक, क्या अधिक प्रकारके अनुभाव भी होते हैं।

अष्टसात्विक भाव—सात्विक भाव आठ प्रकारके हैं। सभी प्रकारके भाव ही स्निग्ध, दिग्ध और रुक्ष जातिभेदसे तीन प्रकारके हैं।[२]

१) स्तंभ, २) स्वेद, ३) रोमाञ्च, ४) स्वरभेद, ५) कम्प (वपथु), ६) वैवर्ण्य, ७) अश्रु एवं ८) प्रलय—इन्हें अष्ट

---

१. अनुभावास्तु चित्तस्थभावानामवबोधकाः। ते बहिर्विक्रियाप्रायाः प्रोक्ता उद्भास्वराख्यया ॥
नृत्यं विलुण्ठितं गीतं क्रोशनं तनुमोटनम्। हुंकार जृंभनं श्वासभूमा लोकानपेक्षिता ॥
लालास्रावोट्टहासश्च घूर्णा हिक्कादयोऽपि च। ये शीताः क्षेपणाश्चेति यथार्थाख्या द्विधोदिताः ॥
शीताः स्युर्गीतजृंभाद्या नृत्याद्याः क्षेपणाभिधाः ॥ (भक्तिरसामृतसिन्धु)

२. कृष्णसम्बन्धिभिः साक्षात् किंचिद्वा व्यवधानतः। भावैश्चित्तमिहाक्रान्तं सत्वमित्युच्यते बुधैः ॥
सत्वादस्मात् समुत्पन्ना ये भावास्ते तु सात्विकाः।
स्निग्धा दिग्धास्तथा रुक्षा इत्यमी त्रिविधा मताः ॥
स्निग्धास्तु सात्विका मुख्या गौणाश्चेति द्विधा मताः।
आक्रमान्मुख्ययारत्या मुख्याः स्युः सात्विका अमी ॥
विज्ञेयः कृष्णसम्बन्धः साक्षादेवात्र सूरिभिः। रत्याक्रमणतः प्रोक्ता गौणास्ते गौणभूतया ॥
तत्र कृष्णसम्बन्धः स्यात् किंचिद्वा व्यवधानतः। चित्तं सत्त्वीभवत् प्राणे न्यस्त्यात्मानमुद्भटम् ॥
प्राणस्तु विक्रिया गच्छन्देहं विक्षोभयत्यलम्। तदास्तम्भादयो भावा भक्तदेहे भवन्त्यमी ॥
ते स्तंभ-स्वेद-रोमांचाः स्वरभेदोऽथ वेपथुः। वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्विकाः स्मृताः ॥
बहिरन्तश्च विक्षोभविधायित्वादतः स्फुटम्। प्रोक्तानुभावतामीषां भावता च मनीषिभिः ॥
प्रलयः सुखदुःखाभ्याश्चेष्टाज्ञाननिराकृतिः। अत्रानुभावाः कथिता महानिपातनादयः ॥
धूमायितास्ते ज्वलिता दीप्ता उद्दीप्तसंज्ञिताः। वृद्धिं यथोत्तरं यान्तः सात्विकाः स्युश्चतुर्विधाः ॥
अथात्र सात्विकाभासा विलिख्यन्ते चतुर्विधाः। रत्याभासभवास्ते तु सत्वाभासभवास्तथा ॥
निःसत्वाश्च प्रतीपाश्च यथा पूर्वममी वराः ॥
निःसर्गपिच्छिलस्वान्ते तदभ्यासपरेऽपि च। सत्वाभासं विनापि स्युः क्वाप्यश्रुपुलकादयः ॥
नास्त्यर्थं सात्विकाभासकथने कोऽपि यद्यपि। सात्विकानां विवेकाय दिक् तथापि प्रदर्शिता ॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

८) प्रलय—इन्हें अष्ट सात्त्विक विकार कहते हैं। इन्हें भी किसी किसीने अनुभावमें गणना की है। भेद करनेका यही कारण है कि पूर्वोक्त तेरह अनुभाव-समुदय आङ्गिक अर्थात् एक-एक अङ्गका अवलम्बन कर उदित होते हैं। सात्त्विक विकारसमूह समस्त ही सत्वका अवलम्बन कर बाहरमें प्रकाशित होता है। बाह्य क्षोभ ही अनुभाव एवं अन्तरीय क्षोभ ही भाव है। सात्त्विक विकारोंमें दोनों प्रकारके क्षोभ हैं। अतएव उनमें अनुभावत्व और भावत्व सिद्ध हुए हैं। ये अष्ट प्रकारके सात्त्विक भाव स्थलविशेषमें धूमायित, ज्वलित, दीप्त और उद्दीप्त होकर प्रकाश पाते हैं। किसी-किसी व्यक्तिमें ये सभी विकार देखे जाने पर भी उन्हें सात्विक नहीं समझना चाहिए। उस उस स्थलमें इन सभी विकारोंको हेय-रत्याभास, सत्वाभास, निःसत्व या प्रतीप कहना होगा। जो सभी व्यक्ति मुक्तिके लिए ईश्वर की उपासना करते हैं, उनमें जो पुलकाश्रु आदि देखते हैं, वे रत्याभाससे होते हैं। जिनका हृदय श्लथ (ढीला) है, उनके हृदय में अकारण आह्लाद और विस्मयादि आभास का उदय होता है। उस आभाससे जो विकार होते हैं, वे सभी ही सत्त्वाभासजनित हैं। जिन लोगोंका अन्तःकरण पिच्छिल है अथवा जो लोग स्तम्भ, पुलक, अश्रु आदि विकारों का अभ्यास करते हैं, उनके पुलकाश्रु आदि—निःसत्वाके अन्तर्गत हैं। भगवानके प्रति विरुद्ध भावद्वारा जिनमें विकार प्रकाश पाते हैं, उनके विकारोंको प्रतीप कहते हैं। ये सभी तुच्छ हैं। सात्त्विक लोगोंकी सदसत् परीक्षा के लिए इस सत्वाभासका उल्लेख आवश्यक है। इसके द्वारा और कोई उपकार नहीं है।

संचारी या व्यभिचारी भाव[१] तेंतीस प्रकारके हैं—

१) निर्वेद, २) विषाद, १) दैन्य, ४) ग्लानि, ५) श्रम, ६) मद, ७) गर्व, ८) शंका, ९) त्रास, १०) आवेग, ११) उन्माद, १२)अपस्मार, १३)व्याधि, १४)मोह, १५)मृति, १६) आलस्य, १७) जाड्य, १८) व्रीड़ा, १९) अवहित्था (भाव गोपन करना), २०) स्मृति, २१) वितर्क, २२) चिन्ता, २३) मति, २४) धृति, २५) हर्ष, २६) उत्सुक्य, २७) अमर्ष, २८) असूया, २९) चापल्य,

---

१. अथोच्यन्ते त्रयस्त्रिंशद्भावा ये व्यभिचारिणः। विशेषेणाभिमुख्येन चरन्ति स्थायिनं प्रति ॥
वागङ्गसत्वमूर्च्छा ये ज्ञेयास्ते व्यभिचारिणः। संचारयन्ती भावस्य गतिं संचारिणोऽपि ते ॥
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति स्थायिन्यमृतवारिधौ। उर्मिवद्वर्द्धयन्त्येनं यान्ति तद्रूपतां च ते ॥
निर्वेदोऽथ विषादो दैन्यं ग्लानिश्रमौ च मदगर्वौ। शंकात्रासावेगा उन्मादापस्मृती तथा व्याधिः ॥
मोहो मृतिरालस्यं जाड्यं व्रीडावहित्था च। स्मृतिरथ वितर्कचिन्तामतिधृतयो हर्ष उत्सुकत्वञ्च ॥
औग्र्यामर्षासूयाश्चापल्यञ्चैव निद्रा च। सुप्तिर्बोध इतीमे भावा व्यभिचारिणः समाख्याताः ॥
अधिरूढे महाभावे मोहनत्वमुपागते। अवस्थान्तरमाप्तोऽसौ दिव्योन्माद इतीर्यते ॥

(भक्तिरसामृतसिन्धु)

३०) निद्रा, ३१) बोध, ३२) उग्रता एवं ३३) सुप्ति।

ये सभी भाव कभी अकेले, कभी अन्य भावके साथ मिलित होकर स्थायी भाव जो रति है, उसके सहाय रूपसे उसकी रसता प्राप्तिका उपकार करते हैं। ये वाक्य, सत्व और अङ्गकी सूचना कर गौण रतिकी तरह मुख्य रतिको पुष्ट करते हैं।

जीव और भगवान्—दोनों ही रसके आस्वादक हैं। जब जीव आस्वादक है, तब भगवान् आस्वाद्य हैं। जब भगवान् आस्वादक हैं, तब जीव आस्वाद्य है। प्रत्युत रस ही आस्वाद्य वस्तु है। रसकी प्रक्रिया ही आस्वादन और चेतन वस्तु ही इसका आस्वादक है। रस नित्य, अखण्ड, अचिन्त्य, एवं परमानन्दस्वरूप है। शुद्धरतिसे महाभाव तक रस उर्द्ध वगत है। शुद्धरतिकी नीच गतिमें यह रस जड़गत मोह पर्यन्त विकृत होता है। विशुद्ध बुद्धियुक्त व्यक्ति ही इसकी उपलब्धि कर सकते हैं। केवल युक्तिद्वारा रसतत्व अनुभूत नहीं होता[1]। युक्ति द्वारा चिद्रस अनुभूत होना दूर रहे, जड़रस भी विचारित नहीं हो सकता।

विभाव, अनुभाव, सात्विक और व्यभिचारी—इन चारों भावोंकी यथायोग्य योजना द्वारा रसतत्वकी प्रकटावस्था सिद्ध होती है। जो लोग आस्वादनके योग्य हैं, वे ही रसतत्व अवगत होंगे। जड़रसाश्रित व्यक्ति परम रसके अधिकारी नहीं हैं।

द्वितीय धारा

उपासनामात्रमें ही रसतत्त्व विचार है

जो सभी व्यक्ति ईश्वर-उपासना करते हैं, उन्हें यह विचार करना उचित है कि उपासना क्या है ? वह क्या जड़मय कार्य है या चिन्तामय कार्य ? अथवा अन्य कोई प्रक्रिया विशेष है ? यद्यपि उपासना कार्यमें बहुत कुछ जड़का आश्रय लेना पड़ता है, तथापि यह कार्य केवल-जड़ानुशीलन कार्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। तब वह किस प्रकारसे हो सकता है ? क्योंकि चिन्ता जड़का अतिक्रम नहीं कर सकती। उपासनाको चिन्ता कहने पर केवल जड़प्रसूत कल्पनाको ही उपासना कहना होगा। यदि जड़ भी नहीं हुआ और चिन्ता भी नहीं हुई तब उपासना क्या है ? साधारण मानवसत्तामें जड़ और चिन्ताको छोड़कर और कुछ भी देखी नहीं जाती। तब क्या नास्तिक होना पड़ा या निर्विशेषवाद स्वीकार

१. अलौकिकीत्वियं कृष्णरतिः सर्वाद्भुताद्भुता। योगे रस विशेषत्वं गच्छत्येव हरिप्रिये॥
वियोगे त्वद्भुतानन्दविवर्त्तत्वं दधत्यपि। तनोत्येषा प्रगाढार्त्तिभराभासत्वमुज्जिता॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

करना पड़ा ! जड़ और जड़चिन्ताकी साक्षात् विपरीत अवस्थाको निर्विशेष अवस्था कहते हैं। उसका आश्रय लेकर नीरस ब्रह्मवाद स्वीकार कर नास्तिकताके दूसरे प्रकारके विशेषका आश्रय ग्रहण करूँ ? तब उपासना नहीं रही। जिसके लिए सभी जीव इतने व्यग्र हैं, वह आकाशकुसुमकी तरह मिथ्या हुई। क्या दुर्भाग्य है !

जड़, जड़चिन्ता और अजड़चिन्तारूप निर्विशेष भाव—ये तीनों सामान्यतः लक्षित तत्वोंको भेदकर जीवकी सिद्ध सत्ताका अनुसन्धान करो। भेद करनेके लिए अनुसन्धान करनेकी बात इसीलिए कही कि ये तीनों प्रकारकी चिन्ताएँ तुम्हें आबद्ध कर तुम्हारे स्वरूपको आच्छादित की हुई हैं। भेद न करने पर उनके हाथोंसे किस प्रकार मुक्त होंगे ? जिस प्रकार तुम्हारी आँखोंके ऊपर यदि तीन आवरण रख दिया जाय और तुम्हारा दृष्टिरोध हो जाय, तो यह कहा जा सकता है कि तुम इन तीनों आवरणोंको भेद कर अपनी आँखोंको बाहर कर अन्य पदार्थोंको देखो। उसी प्रकार तुम्हारी सिद्धसत्तामें जो अपनी चिन्मय आँखें हैं, उन्हें जड़, जड़चिन्ता और जड़भाव चिन्तारूप तीन आवरण आवृत किए हैं। ये तीनों आवरण ही तुम्हारे अनर्थ हैं। उन्हें दूर कर अपनी सहज चक्षुओंको बाहर करो। जीवोंके सहज चक्षु बाहर प्रकाश होने पर जड़, जड़चिन्तामय और जड़ विपरीत चिन्तामय उपासनाएँ और नहीं रहेंगी। तब चिन्मय उपासना ही रहेगी। उसी चिन्मय उपासना का नाम ही रस है। जो लोग उपासना करते हैं, वे रसका[1] ही अनुशीलन करते हैं। वस्तुतः इस रसके अधिकारी बड़े ही दुर्लभ हैं। अतएव यह गोपनीय है[2]।

उपासक लोग दो प्रकारके हैं—रसतत्ववित् उपासक और रसविचारशून्य उपासक। रसविचारशून्य होने पर भी कार्यतः थोड़े बहुत परिमाणमें वे लोग जिस रसकी आलोचना करते हैं, उसे ही तत्व ज्ञानके अभावमें चिन्तागत ध्यान, धारणा, निदध्यासन, समाधि, प्रार्थना, एवादत्, पूजा, प्रेयार (prayer) आदि नाम दिये जाते हैं। जिस समयमें उपासक पूजा, prayer (प्रार्थना) या एवादत्

१. परमानन्द तादात्म्याद्रत्यादेरस्य वस्तुतः। रसस्य स्वप्रकाशत्वमखण्डत्वञ्च सिध्यति ॥
प्रतीयमाना अप्यर्शैर्ग्राम्यैः सपदि दुःखवत्। करुणाद्या रसाः प्राज्ञैः प्रौढानन्दमया मताः ॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

२. फल्गुवैराग्यनिर्दग्धाः शुष्कज्ञानाश्च हेतुकाः। मीमांसका विशेषेण भक्तयास्वादबहिर्मुखाः ॥
इत्येष भक्तिरसिकैश्चोरादिव महानिधिः। जरन्मीमांसकाद्रक्ष्यः कृष्णभक्तिरसः सदा ॥
सर्वथैव दुरूहोऽयमभक्तैर्भगवद्रसः। तत्पादाम्बुजसर्वस्वैर्भक्तैरेवानुरस्यते ॥
व्यतीत्य भावनावर्त्म यश्चमत्कारभारभूः। हृदि सत्वोज्ज्वले बाढं स्वदते स रसो मतः ॥
भावनायाः पदे यास्तु बुधेनानन्यबुद्धिना। भाव्यते गाढसंस्कारैश्चित्ते भावं स कथ्यते ॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु, दक्षिण, ५म लहरी)

आदि क्रियाओंमें आविष्ट होते हैं, उस समय विद्युत् गतिकी तरह एक भाव उनकी अन्तरात्मासे उठकर मनको कम्पित करता है एवं देहमें रोमाञ्च आदि कुछ-कुछ विकार उदित होते हैं। तब ऐसा जान पड़ता है कि यदि यह भाव स्थायी रूपसे रहें, तो बड़ा ही अच्छा होता। वह भाव क्या है? वह क्या जड़का धर्म है, चिन्ताका धर्म है, या जड़ विपरीत धर्म है? सारे जगतमें ढूँढने पर भी कहीं भी जड़में वैसा भाव देखा नहीं जा सकता। तडित्-पदार्थ (Electricity) या चुम्बक (Magnetism), जो जड़ पदार्थों में अत्यन्त सूक्ष्म हैं, उनमें वह अवस्था नहीं है। चिन्ताका विचार करने पर भी उसमें भी यह भाव नहीं है। जड़ विपरीत चिन्तामें तो कुछ भी नहीं है। तब वह भाव कैसे और कहाँ से आया? गंभीर रूपसे विचार कर देखने पर जड़ अच्छादित जीवकी सिद्धसत्तासे ही वह भाव प्रकटित होता है। उपासना कालमें ही उसकी उपलब्धि करते हैं, किन्तु उसकी सत्ताका भली प्रकारसे विचार नहीं करते। उसी विषय पर हम यहाँ विचार करेंगे।

वह अचिन्त्य भाव एक वृत्तिविशेष है। बिना आश्रयके वृत्ति नहीं रहती। जड़ देह और जड़ीय चिन्तामय मनने जिसे अच्छादन कर रखा है, वही शुद्ध आत्मारूप जीव उस वृत्तिका आश्रय है। अपनी क्षुद्रता एवं दूसरे वृहत् तत्वकी अधीनतारूप इस आलोचनाके उदय होनेके साथ ही साथ दियासलाई घिसने या चकमकिके ठोकनेके पश्चात् आगके निर्गमनकी तरह यह वृत्ति सहसा प्रकाशित हो पड़ती है। जिनके प्रति धावित होती है, वे ही उसके एकमात्र विषय हैं। उपासना काल में उस विषयकी उपस्थिति या सान्निध्य होने के कारण यह वृत्ति आश्रयसे बाहर होकर विषयके प्रति धावित होती है। यह वृत्ति ही स्थायी भाव है। साधक और साध्य—ये आलम्बन हैं एवं विषयके विलक्षित गुणसमूह उसके उद्दीपन हैं—यह विभाग उसमें लक्षित हो रहा है। वृत्ति आश्रय और विषयको जिस समय संयोजित करती है, उसी समय आश्रयमें कुछ क्रियालक्षणरूप अनुभाव विलक्षित हुए। पूर्वोक्त तेरह अनुभावोंमें एक या कुछ अवश्य ही देखे जाते हैं। उस समय ही हर्ष, दैन्य या निर्वेद इत्यादि तेंतीस व्यभिचारी भावोंमें से कोई न कोई भाव आकर इस वृत्तिकी क्रिया की सहायता करेगा। पुलक, अश्रु आदि सात्विक विकारके साथ कोई न कोई भाव आकर उपस्थित होगा। यहाँ यह विवेचना करनी होगी कि उपासना क्या है? उपासना के अंगोंको मैंने पृथक् कर दिखलाया। अभी तुम्हारे समझमें आया होगा कि जिस रसकी बात पहले कही जा रही थी, वही उपासना है। विभाव, अनुभाव, सात्विक और व्यभिचारी—इन चारों भावों द्वारा स्थायी-भावकी आस्वाद्य अवस्था-प्राप्ति ही उपासनामें लक्षित हुई। अतएव उपासना ही रस है। जड़ क्रिया या चिन्ता या जड़ विपरीत निर्विशेष चिन्ता कदापि उपासना नहीं है। वे सभी क्रियाएँ सर्वदा नीरस हैं। विशेष बात यह है कि समस्त उपासक सम्प्रदाय ही रसकी प्रक्रियाका अवलम्बन करते हैं। किन्तु वे लोग रस विज्ञानके अभावमें उनकी क्रियाको वैज्ञानिक रूपसे समझा नहीं सकते। पूर्वसङ्ग-संस्कार ही इस अनर्थका हेतु है।

(क्रमशः)

प्रचार-प्रसंग

पश्चिम बिहार, उत्तर बंग तथा आसाममें प्रचार

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्त्तमान सभापति-आचार्य परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि-स्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराज श्रीनवद्वीप-परिक्रमाके कुछ दिनों पश्चात् पश्चिम बिहारके विशिष्ट सज्जनोंके सप्रेम आह्वान पर कलिपावनावतारी स्वयं भगवान् श्रीश्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यदेव द्वारा आचरित प्रचारित शुद्धा भक्ति वाणी प्रचारार्थ अपने सहित श्रीमुरलीमोहन ब्रह्मचारी, श्रीकानाईलाल ब्रह्मचारी, श्रीचिन्मयानन्द ब्रह्मचारी, श्रीगोवर्द्धन ब्रह्मचारी, श्रीश्रीदाम ब्रह्मचारी, श्रीजयदेव ब्रह्मचारी, श्रीलक्ष्मण ब्रह्मचारी आदि ब्रह्मचारियोंको साथ लेकर समितिके मूलकेन्द्र श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठसे प्रस्थान कर बिहार प्रान्तके अन्तर्गत संथाल परगनाके सारसा-जोलग्राममें पधारे। वहाँ बड़े धूमधामसे प्रचार कार्य समापन कर धाधिका, कुमड़ाबाद आदि विभिन्न स्थानोंमें प्रचार करते हुए जिलेके सदर मुकाम दूमका पहुँचे। वहाँ उच्च शिक्षित और कानूनजीवी समाजमें श्रीमन्महाप्रभुके अभूतपूर्व और अकाट्य सिद्धान्तों एवं विचारों का सप्रमाण शास्त्रीय युक्तियों द्वारा सुदृढ़ता-पूर्वक स्थापन करते हुए पूज्यपाद स्वामीजी महाराजने सभाओंमें उपस्थित सज्जनोंको आश्चर्यचकित और स्तंभित कर दिया। सभी व्यक्तियोंने एक मुखसे श्रीस्वामीजी महाराजके अपार पाण्डित्य और अगाध शास्त्रीय ज्ञानकी भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा उन पर श्रीगुरुकृपाका पूर्णतः अनुभव किया। श्रीस्वामीजी महाराज वहाँसे प्रस्थान कर बगालके वीरभूम जिलान्तर्गत सिउड़ी अञ्चल में विपुल प्रचार कर मुर्शिदाबाद, रायगंज आदि स्थानोंमें क्रमशः पहुँचे। वहाँसे जलपाई-गुड़ी जिलान्तर्गत धूपगुड़ी, बारबिसा आदि स्थानोंमें प्रचार करते हुए जलपाईगुड़ी पहुँचे। वहाँ कुछ दिन तुमुल प्रचार कर आसाम प्रदेशके ग्वालपाड़ा जिलान्तर्गत वासुगाँव पहुँचे। वहाँ कुछ दिनों तक प्रचार करते रहे। इसीबीचमें उनके आदेश और आज्ञानुसार श्रीश्रीदाम ब्रह्मचारी, श्रीगोवर्द्धन ब्रह्मचारी एवं श्रीजयदेव ब्रह्मचारी आसामकी राज-धानी शिलांग शहर, टिनसुखिया, दिगबई आदि स्थानोंमें बड़े ही उत्साहपूर्वक प्रचार करते हुए पुनः मूल पार्टीमें आ मिले। इसके पश्चात् पूज्यपाद श्रीआचार्यदेव आजकल गोलोकगंज एवं आसाममें विभिन्न अञ्चलोंमें प्रचार कर रहे हैं।

दक्षिण बिहारमें प्रचार

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्यतम विशिष्ट प्रचारक एवं श्रीभागवत-पत्रिकाके प्रचार सम्पादक त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति-वेदान्त पर्यटक महाराज साथमें श्याम-गोपाल ब्रह्मचारी, श्रीभक्तपांद्रिरेणु ब्रह्मचारी, श्रीगोविन्ददास ब्रह्मचारी और श्रीहरेकृष्ण

दास ब्रह्मचारीको लेकर स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचारित प्रचारित शुद्धा भक्ति वाणी प्रचारार्थ समितिके मूलकेन्द्र श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपसे प्रस्थान कर दिनाङ्क ३ मईको बिहारके राँची शहरमें उपस्थित हुए।

दिनाङ्क ६ मईको स्थानीय गाड़ीखाना स्थित श्रीरामचरण भालाजीके सादर आह्वान पर श्रीस्वामीजी महाराजने उनके वासभवन में रातको ८ बजेसे १० बजे तक श्रीहरि-संकीर्त्तन एवं छायाचित्र द्वारा श्रीकृष्ण लीला प्रदर्शन कर श्रीकृष्णकी स्वयं-भगवत्ता एवं अखिल रसामृतसिन्धुत्व पर दार्शनिक विचार-पूर्ण भाषण दिया। इसके पश्चात् काँटातुलि मोहल्लेके अधिवासियोंके सादर निमन्त्रण पर उन्होंने दिनाङ्क ७ मईसे १६ मई तक वहाँके दुर्गामण्डपमें श्रीमद्भागवत पाठ एवं श्रीहरि-संकीर्त्तन किया। छायाचित्र द्वारा स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुकी लीला, श्रीकृष्ण लीला, भक्त प्रह्लाद-चरित्र आदि दिखलाते हुए श्रीचैतन्य चरितामृतका व्याख्यान दिया। कलियुगका एकमात्र साधन और भजन श्रीहरिनाम संकीर्त्तन ही है—इस शास्त्रीय सत्यका बड़ी दृढ़तासे अकाट्य युक्ति एवं प्रमाणों द्वारा प्रतिपादन किया।

दिनाङ्क १८ मई से २७ मई तक राँची मेन रोड स्थित दुर्गाबाड़ी हॉलमें तथा शहरके विभिन्न स्थानोंपर आयोजित धर्म सभाओंमें श्रीस्वामीजी महाराजने पाठ, वक्तृता एवं छायाचित्रके माध्यमसे श्रोताओंके हृदयमें यह बात भली प्रकार बैठा दी कि जीवमात्र ही श्रीकृष्णके दास हैं, भक्तिसे ही जीव भगवत्प्राप्ति कर सकते हैं, भक्तिसे ही जीव विशुद्ध आनन्दकी उपलब्धि कर सकते हैं, भक्ति द्वारा ही जीवोंके सर्वदुःखोंकी निवृत्ति होती है आदि आदि।

राँची शहरमें अपना प्रचार कार्य समाप्त कर श्रीस्वामीजी महाराज दिनाङ्क २८ मई को पुरूलिया शहर पहुँचे। वहाँकी श्रीहरि-सभामें ५ दिन और विभिन्न स्थानोंमें आयोजित धर्मसभाओंमें ५ दिन शास्त्रीय विचारों का प्रतिपादन कर ७ जून को टाटानगर पहुँचे। वहाँ कुछ दिन प्रचार कर श्रीधाम नवद्वीप प्रत्यावर्त्तन करेंगे—ऐसी आशा है।

—निजस्व संवाददाता